Vol. 5, Issue. 2 (July 2016) pp. 35-40
Sangeet Galaxy
ISSN: 2319-9695

भारतीय संगीत का अध्यात्मवादी चिन्तन

डॉ0 दीपक कुमार त्रिपाठी
लखनऊ, उत्तर प्रदेश
E-mail: dktripathi88@gmail.com

– सारांश –

प्रस्तुत शोधपत्र में भारतीय संगीत का अध्यात्मिक दृष्टिकोण से विवेचन प्रस्तुत किया गया है। प्रथम नाद ओंकार ही सृष्टि की उत्पत्ति का आधार है और यह संसार ही नाद के अधीन है। नाद ही संगीत का कारण है और सृष्टि कर्ता के अनुपम वरदान के रूप में प्रकृति के कण–कण में यह विद्यमान है। आज समस्त विश्व, संगीत के इन्हीं सात स्वरों की चमत्कारिक शक्ति के रहस्यों को विज्ञान में ढूंढ़ रहा है लेकिन नाद वेद तो अपरंपार है और अध्यात्मिक चेतना की जागृति के बिना संगीत का आनन्द ही अधूरा है। भारतीय दर्शन में तो वेदों, उपनिषदों, और शास्त्रों में नाद साधना की महिमा का महात्मय भरा पड़ा है और इसे मनुष्य जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष का साधन माना गया है। संगीत लोकानुरंजन से लेकर मनुष्य की अध्यात्मिक उन्नति मे सहायक है। इन्हीं कुछ तथ्यो का आधार परक अध्ययन प्रस्तुत है जिससे संगीत का अध्यात्मिक संबंध प्रगट होता है।

भारतीय जीवन दर्शन का मूलाधार ही अध्यात्म है। सभी कलाओं का उद्देश्य अंततः परालौकिक आनन्द की प्राप्ति हेतु प्रखर हो उठता है। संगीत भी इसी आत्मानन्द को प्राप्त करने का एक माध्यम है। मनुष्य को परमात्मा के प्रत्यक्ष वरदान के रुप में संगीत की प्राप्ति हुई है। संगीत मनुष्य के अध्यात्मिक विकास में सहायक है तथा आत्मोन्नति के पथ पर चल पड़नें की प्रेरणा शक्ति से ओत–प्रोत है। भारतीय मनीषियों तथा तत्ववेत्ताओं नें इसे मानव जीवन के अभिन्न अंग के रुप में स्वीकार कर इसे ईश्वर की उपासना व मोक्ष–मार्ग का प्रबल साधन माना है। याज्ञवलक्य स्मृति के अनुसार–

"वीणा वादनतत्वज्ञः श्रुतिजाति विशारदः।
तालज्ञश्चप्रयासेन मोक्षमार्ग निगच्छति।।"[1]

अर्थात "वीणा वादन का तत्व जानने वाला, श्रुति और जातियों (प्राचीन संगीत की प्रचलित विधा) में विशारद तथा ताल का ज्ञाता बिना प्रयास ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।" संगीत का क्षेत्र व्यापक हैं। वह हर एक मनुष्य के जीवन में सहज रुप से समाहित है, जिस प्रकार शरीर में आत्मा। मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना होता है; और उसके लिए यह कला, मोक्ष मार्ग की पथ प्रदर्शक है। आत्मा को परमात्मा तक पहुँचाने के लिए यह कला एक सेतु के समान है। संगीत कला में वह रस है, जो कि मनुष्य के बहिर्जगत् से संबधित नही, वरन् ह्रदय की उन छिपी हुई भावनाओं को प्रस्फुटित करता है, जिनके बिना मनुष्य अपनी उन्नति करने में अपने को असमर्थ पाता है। आचार्य भर्तहरि के अनुसार–

"साहित्य–संगीत –कला–विहीन साक्षात पशुः पुच्छ–विषाण–हीनः।
त्रणं न खादन्नपि जीवमानम् तद्‌भागदेयम् परं पशुनाम्।।"[2]

अर्थात् साहित्य संगीत व कला से विहीन मनुष्य साक्षात नाखून और सींघ रहित पशु के समान है और ये पशुओं का भाग्य है कि वो उनकी तरह घास नही खाता है।

मनुष्य का जीवन साहित्य संगीत एवं कलाओ के अभाव में नीरस एवं पशुत्व रूप मे परिणित हो जाता है न तो मानव अपना भौतिक और न ही अध्यात्मिक विकास कर सकता है और इसके बिना सभ्य समाज की कल्पना ही असंभव प्रतीत होती है। संगीत ही तो मानव के अघ्यात्मिक विकास का सहचर है। प्रकृति के कण–कण में निरंतर विद्यमान वह नाद ही सृष्टि का सूक्ष्म संचालक है अतः शास्त्रकारों ने नादाधीनं जगत् की मूल–भूत भावना को आत्मसात् किया है।

मतंग मुनि ने अपने ग्रन्थ वृहद्देशी में नाद की महिमा का बखान इस प्रकार किया है–

"न नादेन विना गीतं न नादेन विना स्वराः।।
न नादेन विना नृत्तं तस्मान्नादात्मकं जगत्।
नादरूपः स्मृतो ब्रह्मा नादरूपो जनार्दनाः।।
नादरूपा परा शक्तिर्नादरूपो महेश्वरः।"[3]

यहां पर नाद के बिना संगीत की कल्पना ही निराधार प्रतीत होती है। बिना नाद के न तो गीत, न स्वर और न ही नृत्य का कोई आधार है। नाद में ही ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश तीनों ही शक्तियों का समावेश है और वह सृष्टि का प्रथम नाद ओंकार ही है। ओंकार ही प्रणव है और परमात्मा का सुन्दर नाम है। मुण्डकोपनिषद मे प्रणव योग अथवा नादयोग का उल्लेख इस श्लोक से प्राप्त होता है–

प्रणवो धनु शरो ह्यत्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत्।।[4]

यहां श्लोक में बह्मरूपी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्रणव (ओंकार) को साधन बताया गया है। संगीत का आधार तत्व ही नाद है जो कि सम्पूर्ण जगत में व्याप्त है तथा सृष्टि का कारण है। इसलिए इसे नादब्रह्म की उपासना का साधन माना गया है। शारंगदेव जी के अनुसार–

"चैतन्यं सर्वभूतानां विवृत्तं जगदात्मना।
नादबह्म तदानन्दमद्वितीयमुपास्महे।।1।।
नादोपासनया देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
भवन्त्युपासिता नूनं यस्मादेते तदात्मकाः।।2।।"[5]

अध्यात्म के क्षेत्र मे नाद को ब्रह्म की संज्ञा से विभूषित किया गया है। नाद की उपासना ही ब्रह्म की उपासना है। वास्तविकता में जो नाद की साधना करते है उन्हें ब्रह्म की प्राप्ति का मार्ग सहज रूप में ही प्राप्त हो जाता है। डॉ0 शरत्चन्द्र परांजपे जी के अनुसार–"समस्त सृष्टि का मूल, नाद मे निहित है तथा परमश्रेष्ठ परम्ब्रह्म का स्वरूप नादमय है। नाद की विविध विधियों का रहस्य परमानन्द में विलीन होने में है। आहत नाद से लेकर अनाहत नाद की ओर अग्रसर होने की प्रक्रिया योगमार्ग के नादानुसंधान तथा लययोग की विशिष्ट साधना है।"[6]

संगीत की उत्पत्ति के विषय में अध्यात्मिक मतानुसार संगीत का जन्म ईश्वरीय चेतना के द्वारा प्राप्त होता है। वेद, पुराणों, उपनिषदों व स्मृति ग्रन्थों ने संगीत की उत्पत्ति का कारण परमात्मा से ही जोड़ा है तथा उनके निराकार स्वरूप ओंकार को ही संगीत का मूल आधार माना हैं। इस प्रणव में तीन अक्षर 'आ' 'उ' और 'म', तीन शक्तियों के द्योतक है। 'आ'– उत्पत्ति कारक ब्रह्मा, 'उ'– धारक, पालन, रक्षण कर्ता विष्णु तथा 'म'–महेश शक्ति का द्योतक है। कहा जाता है कि संगीत कला

ब्रह्मा जी से उत्पन्न होकर भगवान शिव को प्राप्त हुई। भगवान शिव से देवी सरस्वती जी को तथा सरस्वती जी से यह कला नारद जी को प्राप्त हुई। नारद जी ने स्वर्ग के गंधर्व, किन्नर, और अप्सराओं को इस कला की शिक्षा दी और वहां से ही भरत, नारद, और हनुमान जैसे ऋषि जो इस कला में निपुण थे, इसे पृथ्वी पर लाकर इस गांधर्व विद्या का विस्तार किया।

”शिव पुराण के उल्लेखानुसार नारद ने वर्षों योग साधना की तब भगवान शंकर ने प्रसन्न होकर उन्हें संगीत कला प्रदान की। शयन मुद्रा में अवस्थित पार्वती के अंग–प्रत्यंगो को देखकर उन्हीं के आधार शिव ने वीणा बनाई तथा अपने पांच मुखों से पांच रागों की उत्पत्ति की। पार्वती के श्रीमुख से छठा राग उत्पन्न हुआ। शिव के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण एवं आकाशस्थ मुखों से क्रम से भैरव, हिण्डोल, मेघ, दीपक, तथा श्री राग प्रगट हुए। पार्वती के मुख से कौशिक राग उत्पन्न हुआ।“[7]

पंचभूतों से निर्मित यह संसार, नाद के अधीन है। प्रकृति के कण–कण में संगीत किसी न किसी रूप मे परमात्मा के अंश की तरह अव्यस्थित है। कहीं पर आहत तो कही अनाहत रूप में, पशु–पक्षियों की वाणी में तो कही झरनों के कल–कलरव में। कही योगियों के हृदय में सूक्ष्म रूप से तो कहीं मेघों के गर्जन में विद्यमान नाद संगीत ही है जो निरंतर प्रकृति के स्पन्दन के साथ लयबद्ध है। संगीत शास्त्रों में संगीत के स्वरों का पशु–पक्षियो की बोली से भी संबंध के प्रमाण मिलते है। नारद के ग्रन्थ नारदीय शिक्षा में इसके लिए एक श्लोक का वर्णन भी है तथा इस ग्रन्थ का काल सातवीं शताब्दी का माना जाता है। इसका मतंग मुनि के ग्रन्थ वृहद्देशी में भी इस प्रकार उल्लेख मिलता है–

”षडजं वदति मयूरो ऋषभं चातको वदेत्।
अजा वदति गान्धारं क्रौंचो वदति मध्यम्।।
पुष्प साधारणे काले कोकिलः पंचम वदेत्।
प्रावृट काले सम्प्राप्ते धैवतं ददुरो वदेत्।।
सर्वदा चतथादेवि निषादं वदते गजः।”[8]

अर्थात मयूर षड्ज में, चातक ऋषभ स्वर में, बकरा गांधार स्वर में, कौंच नामक पक्षी मघ्यम स्वर मे, बसंत ऋतु में कोयल पंचम स्वर मे, प्रावृष काल अर्थात वर्षा दृतु में दादुर धैवत और हाथी निषाद स्वर में बोलता है। स्वरों का पशु–पक्षियो की बोली से संबंध स्थापित करने का कारण प्रकृति में सूक्ष्म रूप से विद्यमान संगीत का प्रकटीकरण हैं। इनका वर्तमान में कोई वैज्ञानिक तथ्य भले ही प्राप्त न होता हो किन्तु हजारों वर्ष पूर्व भी संगीत के स्वरों को प्रकृति के तत्वो में खोजने का एक अध्यात्मिक आधार प्राप्त होता है। पंचतत्वों से निर्मित यह मानव शरीर रूपी वीणा में स्वर, लय और ताल का सूक्ष्म सांगीतिक प्रवाह अनवरत् चलता है। रामचरित मानस की इस चौपाई में इन पंच तत्वों का दर्शन होता है।

क्षिति जल पावक गगन समीरा । पंच रचित यह अधम शरीरा।।

”इन्हीं पाँच तत्वो से मिलकर मानव शरीर का निर्माण होता है और यही तत्व जीवन के आधार माने गए है। इनमें जहाँ किसी एक की भी कमी हुई कि जीवन लीला समाप्त हुई। यही पाँच तत्व प्रकृति का आधार माने जाते है। जड़ और चैतन्य की सृष्टि का अस्तित्व इन्हीं पर है। इधर वैज्ञानिको ने सिद्ध कर दिया है कि उक्त पाँचों तत्वो में संगीत प्रचुर मात्रा में विद्यमान है, उधर भावुक व्यक्ति प्रकृति के कण–कण में संगीत के निहित होने का दावा करते है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राणी–मात्र की उत्पत्ति संगीतमय वातावरण एवं संगीतमय तत्वों से परिपूर्ण होती है।

स्वर आत्मा का नाद है और आत्मा परमात्मा का स्वरूप। जिस प्रकार आत्मा का संबंध परमात्मा से माना जाता है, उसी प्रकार स्वर का संबंध आत्मा से मानना पड़ेगा। इस युक्ति से संगीत और आत्मा का संबंध भी सुदृढ़ सिद्ध होता है।"[9]

संगीत ग्रथों में सांगीतिक स्वरों का ऋषियों ,देवताओं, सप्तद्वीपों और रंगो के साथ भी अध्यात्मिक संबध दर्शाया गया है और यह सिद्धान्त काल्पनिक न होकर वैज्ञानिक लगता है। "सर्वप्रथम स्वरों का साक्षात्कार करने वाले आचार्यों के नाम 'ऋषि' रूप में उल्लिखित है। ऋषियों के साथ देवताओं का भी उल्लेख है। इस सिद्धान्त का तात्पर्य यह है कि ऋषियों ने स्वरों के देवताओं की कृपा से स्वरों का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया। ऋषियों की दीर्घकालीन तपस्या एवं देवताओं की कृपा के प्रतिफल गांधर्व के सात स्वर है। स्वरों के साथ द्वीपों का संबंध स्थापित करने का तातपर्य यह है कि उन द्वीपों में स्वरों के साक्षात्कार के लिए प्रयत्न किये गये।"[10] इसका समर्थन संगीत दर्पण ग्रन्थ में मिलता है। यहां पर संगीतदर्पण के रचयिता पं0 दामोदर के अनुसार –

"कुलानि जातयो वर्णा दीपान्यार्ष च दैवतम्।
छंदासि विनियोगाश्च स्वराणां श्रुतिजातयः।।"[11]

उपरोक्त श्लोक में स्वरों का संबंध द्वीपों और देवताओं से मिलता है। द्वीपों की संख्या सात है इसलिए पृथ्वी को सप्तद्वीपा वसुन्धरा भी कहा जाता है। स्वरों का रंगो के साथ संबंध स्थापित करने का अर्थ ही है स्वरों के ध्यान की वह अवस्था जिसमें स्वरो के आनन्द की केवल मानसिक ही नही वरन् अध्यात्मिक आनन्द के स्तर तक जाकर साधना को परिपक्वता की स्थिति का आभास कर लेना है।

"स्वरों के वर्ण अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में विभाजन श्रुति संख्या के आधार पर किया गया है। चतुः श्रुतिक षड्ज, मध्यम, पंचम को ब्राह्मण, त्रिश्रुतिक ऋषभ, धैवत को क्षत्रिय, द्विश्रुतिक गांधार निषाद को वैश्य और साधारण अंतर स्वरों को शूद्र कहने का तात्पर्य यह हो सकता है कि जैसे समाज को सुचारू रीति नीति से चलाने के लिए सभी का सहयोग आवश्यक होता है उसी प्रकार गायन वादन की क्रिया में सभी स्वरों का उचित सहयोग आवश्यक है।"[12]

यहां स्वरो के देवता द्वीप वर्ण ऋषि और रंगो को इस सारणी से समझा जा सकता है–

सारिणी [13]

वृहददेशी, संगीत रत्नाकर व भरत भाष्यम् के अनुसार

स्वर	श्रंग	वर्ण	छनद	ऋषि	छेवता	द्वीप	कुल
षड्ज	लाल कमलपत्र (मतंग)	ब्राह्मण	गायत्री (भरत) अनुष्टुभ (सं.र.)	अग्नि	ब्रह्मा (वृह. भरत) अग्नि (सं.र.)	जम्बू	देव
ऋषभ	किचित पीला (हरा –वृह.)	क्षत्रिय	उष्णिह (भरत) गायत्री (रत्ना)	ब्रह्मा	अग्नि (वृह. भरत) ब्रह्मा (रत्ना)	शाक	ऋषि
गांधार	कनक रंग गहरा पीला	वैश्य	अनुष्टुभ (भरत) त्रिष्टुभ (रत्ना)	चंद्रमा	सरस्वती (वृह. रत्ना.)	कुश	देव
मध्यम	शुक्ल	ब्राह्मण	वृहती (भरत. रत्ना.)	विष्णु	शंकर (वृह. रत्ना.)	कौन्च	देव
पंचम	काला	ब्राह्मण	पंक्ति (रत्ना. भरत.)	नारद	चंद्र (भरत) विष्णु (रत्ना)	शाल्मली	पितृ
धैवत	पीला	क्षत्रिय	त्रिष्टुभ (भरत)	तुम्बरू	इंद्र (मतंग)	श्वेत	ऋषि

			उष्णिह (रत्ना)		चंद्र गणेश (वृह. रत्ना.)		
निषाद	कर्वुर (सर्ववर्ण)	वैश्य	ज्गती	तुम्बरू	सूर्य	पुष्कर	असुर
अंतर गांधार		शूद्र	———	——	——	——	——
काकली निषाद		शूद्र	———	——	——	——	——

भारतीय अध्यात्मिक दर्शन में संगीत का महात्मय ऐसा है कि हमारे देवी–देवताओं के साथ संगीत का संबंध जोड़ा जाता है। भगवान कृष्ण की वंशी, आदिदेव शिव का डमरू, भगवती वीणा–पाणि की वीणा एवं श्रीविष्णु का शंख आदि हमारी संस्कृति के परिचायक है। स्वयं भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है कि "वेदानां सामवेदोस्मि"[14] अर्थात वेदों में मै सामवेद हूँ, यह कहकर भगवान ने सामवेद को सर्वोच्च पद दिया है। वेदों की जो ऋचायें स्वर सहित गाई जाती है, उनका नाम सामवेद है। वेद की ऋचाऐं मंत्र आदि सब संगीत का ही रूप है इसलिए इन्हें लय में गाया जाता है। सामवेद में इन्द्र रूप से भगवान की स्तुति का वर्णन है। इसलिए सामवेद भगवान की विभूती है। वैदिक संगीत का विस्तृत अध्ययन एक अलग विषय है। यहां पर हम संगीत में अध्यात्मिक तत्वों की विवेचन कर रहे है। अध्यात्म का उद्देश्य ही मानव के चित्त को शांत करके उसे आत्मोन्नति के मार्ग पर चलने के लिऐ प्रेरित करना है। संगीत के द्वारा ध्यान साधना का भी प्रावधान होता है। संगीत मनुष्य में उच्चकोटि के नैतिक व धार्मिक गुणों की वृद्धि हेतु सहायक है।

अतः "अध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखे तो भी संगीत कला अन्य ललित कलाओ से आगे है। आध्यात्मिकता का मूल एकाग्रता में है, चिंतन मे है, ध्यान में है। तन्मय होने की स्थिति मे प्रायः नेत्र बंद कर लिए जाते है। एकाग्रता का एक अन्य पक्ष है : मानसिक निष्क्रियता। काव्य कला में शब्दार्थ समझने के लिए लगातार मस्तिष्क सक्रिय रहता है। संगीत कला में मानसिक सक्रियता आवश्यक नही है याने संगीत की व्याकरण को समझना आवश्यक नही है इसलिए एक नवजात शिशु भी संगीत से आनंदित हो जाता है और मानवेतर प्राणी भी।"[15]

अतः हम यह कह सकते है कि अध्यात्म तथा संगीत एक दूसरे के अभिन्न अंग बनकर भारतीय संस्कृति के मूल में स्थापित है। संगीत केवल रास व मनोरंजन का साधन न होकर ईश्वर भक्ति का माध्यम है। प्राचीनकाल से ही संगीत मोक्ष प्राप्ति का मार्ग रहा है। वैदिक काल से ऋषि मुनियों ने अपने मनःभावो की अनुभूतियों कों छन्दबद्ध किया है। देवालयों तथा मंदिरो में आराधना हेतु संगीत तथा नृत्य परंपरागत रूप से प्राचीन काल से आघुनिक काल तक निरंतर प्रचलित रहे है। मध्यकाल में भक्तकवियों ने भी इसके महत्व को समझा और इसे अपने पदों में तथा अपनी रचनाओं मे स्थान दिया। संगीत के द्वारा भारतीय दार्शनिकों, संतो और भक्त कवियों जैसे सूरदास, मीराबाई, कबीर, गुरु नानकदेव, तुलसीदास, नन्ददास, चैतन्य महाप्रभु, और वल्लभाचार्य ने परमतत्व का साक्षात्कार तक कर लिया । भारतीय संगीत का एक गौरवपूर्ण इतिहास है। ललित कलाओं में संगीत व काव्य कला युगों –युगों से अपनें सुनहरे इतिहास का साक्षी रही है। आज कलियुग में भी संगीत, अध्यात्म और भक्ति का एक अनुपम साधन है।

सन्दर्भ सूची

1 – संगीतरत्नाकर प्रथम अध्याय टीका कल्लिनाथ, भाग–1, अड्यार संस्करण, पृष्ठ सं0 17
2 – भर्तहरि नीति शतकम् , श्लोक सं0– 12
3 – वृहद्देशी– मतंग मुनि, श्लोक सं0 16 व 17, सन् 1928 त्रिवेन्द्रम सं0, पृष्ठ सं0–2 व 3
4 – मुण्डकोपनिषद अध्याय –2 खण्ड –2 श्लोक–4
5 – संगीतरत्नाकर प्रथम अध्याय, भाग–1, अड्यार संस्करण, पृष्ठ सं0 62 एवं 63
6 – संगीत निबंध संग्रह,–प्रो0 हरिश्चन्द्र श्रीवाास्तव, 'संगीत कला की अध्यामिक पृष्ठभूमि' – डॉ0 शरत्चन्द्र परांजपे का लेख, पृष्ठ सं0 56
7 – कालिदास साहित्य एवं संगीत कला, डा0 सुषमा कुलश्रेष्ठ, पृष्ठ सं0–14
8 – वृहद्देशी– मतंग मुनि, सन् 1928 त्रिवेन्द्रम सं0, पृष्ठ सं0–13
9 – संगीत–निबंधावली, संगीत और जीवन– डॉ0 लक्ष्मी नारायण गर्ग जी का लेख, पृष्ठ–72
10 – भारतीय संगीत शास्त्र, तुलसी राम देवांगन, पृष्ठ सं0– 5
11 – संगीत दर्पण, श्लोक सं0–9, पं0 दामोदर, प्रथम सं0 जुलाई 1950 संगीत कार्यालय हाथरस, पृष्ठ –7
12.– भारतीय संगीत शास्त्र, तुलसी राम देवांगनए पृष्ठ सं0– 6
13 – भारतीय संगीत शास्त्र, तुलसी राम देवांगन, पृष्ठ सं0– 7
14 – श्रीमदभागवत्गीता, अध्याय 10, श्लोक सं0–22
15– भारतीय संगीत का सौंदर्य विधान,– मधुरलता भटनागर, पृष्ठ–225